

# मुखौटा-कला और रंगमंच

## सूर्य प्रकाश

'मुखौटा' अर्थात आवरण। मुखौटा-कला देश व दुनिया की प्राचीनतम कलाओं में से एक है। मुखौटा-कला का प्रचलन प्रागैतिहासिक काल के आदिम समाज से पाया जाता है। मुखौटा कला, संस्कृति का भी एक अंग है जिसके माध्यम से उस क्षेत्र की भौगोलिक संपदा का अंदाजा लगाया जा सकता है, क्योंकि मुखौटा निर्माण में स्थानीय वस्तुओं का ही प्रयोग किया जाता है। आदिम समाज में इसका प्रयोग धार्मिक अनुष्ठानों व शिकार हेतु किया जाता था, परंतु आदिम समाज में शिकार व अध्यात्म केंद्रित मुखौटा अब रंगमंच की शास्त्रीय व लौकिक प्रस्तुति में सर्वत्र मिलता है। "पाषाण युग आरंभिक, अनगढ़ कला क्षीण मुखौटों से लेकर आज के गतिशील हिस्सों वाले मैकेनिकल मुखौटों और प्लास्टिक सर्जरी से बन रहे व्यक्ति के स्थायी नकली चेहरों (मुखौटों) तक मानव जाति के साथ-साथ इन्होंने एक लंबी यात्रा की है। धार्मिक, आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और प्रादेशिक क्षेत्रों में कई मंजिल पार करते हुए अब इन्होंने आधुनिक जीवन एवं समाज में एक सजावटी वस्तु या कलाकृति के रूप में अपनी प्रतिष्ठा बना ली है।"

मुखौटा आज के जीवन में अत्यंत आवश्यक हो गया है। आज जिस तरह के समाज में मनुष्य जीवनयापन कर रहा है वहाँ मुखौटा होना अनिवार्य हो गया है। वर्तमान मनुष्य के बारे में विष्णुपुराण ने भविष्यवाणी कर दी थी- 'कपट-धारणमेव महत्वहेतु'

यही भाव साम्य हिंदी के कवि धर्मवीर भारती ने भी अपनी कविता अंधायुग की पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया। 'जिनके नकली चेहरे होंगे केवल उन्हें महत्व मिलेगा'

मुखौटों का प्रयोग प्रारंभ में केवल शिकार व देव-स्तुति हेतु हुआ, परंतु लोकनाट्य एवं लोकनृत्य में इसने विस्तार पाया है। मुखौटों का प्रयोग रंगमंच का अब महत्वपूर्ण अंग बन गया है। रामलीला, रासलीला, जैसे पौराणिक कथानक आधारित नाटकों के साथ-साथ आज आधुनिक नाटकों एवं नृत्य तक में इसकी भूमिका बनी हुई है।

"डायोनिसिया के अधिष्ठाता, मदिरा एवं उल्लास के देवता डायोनिसस की उपासना पद्धति के अंतर्गत कुछ अनुष्ठान ऐसे भी थे जिन्हें उपासक मुखौटे पहनकर संपन्न करते थे। यह 'स्व' के विलयन एवं अनुष्ठान रहस्यात्मकता के प्रतीक थे और इस अर्थ में नाटक की प्रकृति के अनुकूल।"

मुखौटा-कला ने एक लंबी यात्रा की है जिससे वर्तमान समय में इसका उपयोग कई ढंग से किया जाता है।

"मुखौटा का प्राचीनतम इस्तेमाल आदिवासियों ने शिकार के समय जानवरों से अपना चेहरा छुपाने के लिए आत्म सुरक्षा की दृष्टि से किया होगा। इनके अलावा चीन में रोगों के मुखौटे चिकित्सा के लिए, युद्ध के मुखौटे शत्रुओं में आतंक पैदा करने के लिए, प्रजनन और फसलों की वृद्धि के लिए लगाये जाने वाले

अनुष्ठानों में भी मुखौटों का महत्वपूर्ण स्थान था। खेल-मुखौटों (हेलमेट) का प्रयोग तो आज खूब किया जाता है।"

मुखौटा का शाब्दिक अर्थ है जो मुख को ओट में ले जाय यानी छिपा ले। उड़िया में 'छउ' शब्द मुखौटे के लिए प्रयोग किया जाता है। शशीधर आचार्य बताते हैं कि 'छ' का अर्थ छाना और 'उ' का अर्थ है-किसी अंग को छा लेना। मुखौटा वही होता है जो मुख पर छा जाए।

अंग्रेजी में मुखौटे के लिए 'मास्क' उपयोग में लिया जाता है। ऑक्सफोर्ड डिक्सनरी के अनुसार जिसका अर्थ है-जो चेहरे को ढक ले, रूप बदलने के प्रयोग में आए। अंग्रेजी के शब्द मास्क की उत्पत्ति का संदर्भ फ्रेंच के मास्क्यू, इतालवी के मास्करा, लैटिन के मस्क से जो अरबी के मसखरा से प्रभावित है। मसखरा जो तरह तरह के रूप बदल लेता है, लोगों को हँसाता है।

मुखौटा सामान्य अर्थों में एक आवरण मात्र है जिसके पीछे मनुष्य का प्राकृत रूप छुपा होता है। अपने प्राकृत रूप को छुपाकर दूसरे के रूप को धारण करना तथा अपनी निजी सिद्धि के लिए मुखौटे का प्रयोग होता ही रहा है।

"मुखौटा मनुष्य की कल्पनाशीलता और सृजनात्मकता का सुंदर उदाहरण है। मुखौटा मनुष्य को वह आवश्यक दूरी और छिपाव देता है। जिसके बिना किसी विशेष बात को कहना असंभव होता है।"

मुखौटे के माध्यम से उस सत्य से रूबरू कराया जाता है जो सामान्यतः नहीं हो सकता, किंतु मुखौटा केवल झूठ को नहीं प्रदर्शित करता, बल्कि नाटक के मंच पर मुखौटा पहनकर अभिनेता दर्शकों को सत्य के करीब ले जाता है।

अज्ञेय ने मुखौटे पर लिखा है कि "असल जीवन में यह फरेब है और नाटक में सच्चाई।"

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो मुखौटा कला की शुरुआत ग्रीक से मानी जाती है। सर्वप्रथम इसके इस्तेमाल के साक्ष्य वहीं से मिलते हैं। विश्व के लगभग समस्त देशों में मुखौटा प्रचलन का प्रमाण पाया जाता है-

"जिसमें अफ्रीका के आदिम मुखौटे विशाल आकार के होते हैं पितरों के प्रतीक में इनकी पूजा होती है। मिस्र के ममी मुखौटे विश्व भर में प्रसिद्ध हैं यहाँ के भित्ति चित्रों में भी देवताओं के मुखौटों का अंकन मिलता है।"

"जिसमें अफ्रीका के आदिम मुखौटे विशाल आकार के होते हैं पितरों के प्रतीक में इनकी पूजा होती है। मिस्र के ममी मुखौटे विश्व भर में प्रसिद्ध हैं यहाँ के भित्ति चित्रों में भी देवताओं के मुखौटों का अंकन मिलता है।"

भारतीय परिप्रेक्ष्य में ही मुखौटे के प्रचलन में वैविध्य पाया जाता है। यहाँ मुखौटे कई तरह से उपयोग किये जाते हैं विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले नाटक, लोकनाट्य, लोकनृत्य आदि- "ओड़िशा के प्रहलाद नाटक, भागवत मेला, महाराष्ट्र में दशावतार, राजस्थान के गवली, गंभीरा, बिहार के बिदापत नाच, असम के अंकिया,

नाट, तमिलनाडु के तेरेकुतु, ओडिशा, बंगाल और झारखंड के छऊ, रामनगर की रामलीला में भी मुखौटों का प्रयोग होता है।"

इसके अतिरिक्त विश्व भर में अपनी मुखौटा कला के लिए जाना जाने वाला असम का माजुली क्षेत्र। असम के सांस्कृतिक उत्थान के एक मात्र हेतु श्रीमंत शंकरदेव हैं। शंकरदेव जी ने एकशरणिया नाम धर्म की स्थापना की, जिसमें सभी भेदभाव को मिटाकर सभी मनुष्य में एक्य भाव की प्रतिष्ठा की।

"माजुली, वहाँ की सत्र-संस्कृति, अध्यात्मिकता, मुखौटा-कला सभी का संदर्भ शंकरदेव से जुड़ा हुआ है। शंकरदेव असमिया साहित्य के पुरोधों में से हैं। उन्होंने मुरझाती हुई असमिया जाति, समाज और संस्कृति में नवीन जीवन का संचार किया। असमिया साहित्यिक- सांस्कृतिक इतिहास में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। शंकरदेव ने अपने समय में हो रहे धार्मिक और सामाजिक पतन को देखा और उसका पुरजोर विरोध किया। धर्म के नाम पर हो रहे शोषण, अंधविश्वास, नरबलि जैसी कुरृतियों से उन्हें घृणा थी। अतः भागवत धर्म नये सिरे से जनता के सामने रखा तथा 'एकशरणिया भागवत धर्म' की प्रतिष्ठा की।"

असम में मुखौटा-कला की शुरुआत भी श्रीमंत शंकरदेव जी के कर कमलों से हुई।

"एक विशिष्ट कला के रूप में मुखौटों का सर्वप्रथम प्रयोग शंकरदेव ने ही किया। शंकरदेव की प्रथम नाटकीय रचना के रूप में चर्चित 'चिह्नयात्रा' भउना में ही पहले-पहल मुखौटों का उपयोग किया गया था। भउना का सृजन सर्वप्रथम शंकरदेव ने ही किया। भउना नाट्य का ही एक रूप है।"

पूर्वतर में श्रीमंत शंकरदेव जी ने जिस मुखौटा-कला का सूत्रपात किया, उसके प्रसार को माजुली के कमलाबाड़ी सत्रों के संतों ने आगे बढ़ाया।

"शंकरदेव के बाद माधवदेव के द्वारा भी भाओना में मुखौटों का इस्तेमाल करने की बात चरित ग्रंथ में उल्लिखित है। माधवदेव के बाद नारायणदास, ठाकुर आता, बरविष्णु आता के द्वारा भी मुखौटों के निर्माण का उल्लेख है।"

रंगमंच में भी मुखौटों का प्रयोग सबसे पहले श्रीमंत शंकरदेव जी द्वारा ही हुआ उन्होंने अंकिया, भाओना में इसका सर्वप्रथम प्रयोग किया जो आज तक प्रचलन में है।

"बांस-काठ के जरिये मुखौटे का निर्माण करके मंच पर व्यवहार करके दिखाने वाले पहले महान शिल्पकार हैं श्री शंकरदेव। उनसे पहले विश्व के किसी भी रंगमंच पर 'मुखौटे पर मुखौटे का इस्तेमाल करके नाटक प्रदर्शित करने का दृष्टांत देखने को नहीं मिलता है।"

आज यह क्षेत्र अपनी मुखौटा कला के लिए विश्व भर में जाना जाता है। यहाँ अंकिया व भावना (भाओना) नाट होता है।

"सांस्कृतिक महत्व की मनमोहक माजुली की काया दिन-दिन छीज रही है। यहाँ सत्रीय, भाओना (भावना), रास आदि नृत्यों में सत्रीय नृत्य को अखिल भारतीय मान्यता मिली हुई है। भाओना नृत्य में पौराणिक चरित्रों के लिए पहने जाने वाले मुखौटे के चलते यहाँ का मुख (मुखौटा) लोक-शिल्प आज भी जीवित है। इन मुखौटों को बनाने में बेंत-बांस, कागज-कपड़ा, कुम्हार माटी, रंग आदि का प्रयोग होता है। कुछ मुखौटे तो अर्ध मानवाकार होते हैं जिनमें हाथ भी बने होते हैं। नरसिंह के मुखौटे में जहाँ चार हाथ होते हैं वहीं बाणासुर के मुखौटे के बीस हाथ। इसके अलावा हस्तलिखित-ग्रंथ-कला को भी जीवित रखा गया है। इनके पृष्ठों पर ग्रंथ के कथानुसार विभिन्न रंगों में चित्र किये जाते हैं।"

भारतीय मुखौटा-कला में मुखौटे के लिए 'छउ' शब्द का प्रचलन बंगाल, उड़ीसा एवं झारखंड में मिलता है। भारतीय मुखौटा-कला में छउ भी लोकप्रिय है इसमें 'पुरुलिया छउ' सबसे अत्यधिक लोकप्रिय है-

"पूर्वी भारत में विशेषकर बंगाल, बिहार और उड़ीसा के राज्यों में ऐसी एक दर्जन नृत्य शैलियाँ हैं, जिन्हें छउ कहा जाता है। अतः 'छउ' एक व्यापक अर्थ देने वाला नाम है। छउ नृत्यों का आरंभ क्षेत्र-पश्चिम बंगाल का दक्षिण-पश्चिम क्षेत्र, बिहार का दक्षिण क्षेत्र, उड़ीसा के उत्तर तथा पश्चिम क्षेत्र से युक्त निकटस्थ क्षेत्र हैं। छउ नृत्य की इन विविध शैलियों को प्रतिनिधिक माना जाता है : पुरुलिया, सिरइकेला और मयूरभंज। पुरुलिया, पश्चिम बंगाल में है तो मयूरभंज उड़ीसा में है और सिरइकेला हालाँकि अब बिहार में है, पर सभी छउ नर्तक उड़िया भाषी हैं।" यहाँ छउ शैलियाँ नृत्य व नाट्य के माध्यम से प्रस्तुत होती हैं। कहीं किसी में नाटकीयता अधिक है तो किसी की साज- सज्जा अनूठी है।

"इन छउ शैलियों में प्रमुख अंतर-मुखौटों के प्रयोग में है। छउ की पुरुलिया और सिरइकेला शैलियों में मुखौटे का प्रयोग होता है, जबकि मयूरभंज शैली में मुखौटों का प्रयोग नहीं होता। सिरइकेला मुखौटे अधिक परिष्कृत होते हैं, पर उन्नत शीर्ष सज्जा (टोप) सहित पुरुलिया मुखौटे अधिक नाटकीय होते हैं। पश्चिम बंगाल के परंपरागत जात्रा थियेटर (नाट्यशास्त्र) से प्रभावित, पुरुलिया छउ नृत्य एक प्रभावशाली नाट्याभिनयता और मुखौटों के प्रयोग के साथ नृत्य रूप में प्रस्तुत पौराणिक प्रसंगों को दुर्लभ प्रकार की सुस्पष्टता प्रदान करता है।"

आज मुखौटों की उपयोगिता विश्वभर में है। मुखौटा निर्माण में बहुत से लोगों का एक मात्र आजीविका का साधन भी मुखौटा निर्माण कला है। भारतीय मुखौटों की माँग दशहरे व अनुष्ठानों के समय अधिक बढ़ जाती है। इसी प्रकार पुरुलिया छउ क्षेत्र में भी मुखौटों की मांग बढ़ जाती है।

मुखौटे का प्रयोग हमें नृत्य में भी देखने को मिलता है, किंतु नृत्य के मुखौटे रंगमंच के मुखौटे से भिन्न होते हैं। छउ, छाम, याक, लामा आदि ऐसे नृत्य हैं जिसमें विभिन्न प्रकार के मुखौटे प्रयोग में लाए जाते हैं। इन नृत्यों में भी मुखौटा-कला का सुंदर प्रयोग किया जाता है।

मुखौटा निर्माण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के होने से इसकी प्रविधियाँ भी भिन्न हैं। भारतीय संस्कृति की विविधता भारत को अन्य देशों की तुलना में विलक्षण बनाती है। आदिम समाज में जानवरों के अवशेष सींग, पक्षियों के पंख, लकड़ी और किसी किसी जनजातीय समुदाय में हड्डियों के भी मुखौटे प्राप्त होते हैं।

छठ में नदी किनारे की खास तरह की मिट्टी का उपयोग करते हैं। सामान्यतः मुखौटा निर्माण में प्रयुक्त होने वाली सामाग्री-मिट्टी, लकड़ी, धातु, पत्थर, चूड़ी, हाथी-दांत सींग, पंख, प्लास्टिक उन, चालेल, लौकी, मोम, कागज की लुगदी इत्यादि। आज आधुनिक सभ्यता में विभिन्न अनुसंधान के कारण प्लास्टिक अविष्कार के बाद प्लास्टिक से भी कई तरह के मुखौटे बनाए जाते हैं।

रंगमंच संयुक्त रूप से दृश्य व श्रव्य संचार का माध्यम है जिससे समाज का हर वर्ग लाभ लेता है। यह नाटक, लोकनाट्य, नृत्य व अन्य रूपों में सामने आता है। रंगमंच में संस्कृति, सभ्यता के विविध आयाम को समग्रता में अपने आप में समाहित किए हुए है।

"रंगमंच में अनेक प्रदर्शनकारी कलाएँ समाहित हैं, जो आवश्यकतानुसार इसमें प्रयुक्त होती रहती हैं। रंगमंच अपने आप में एक संपूर्ण अनुभव है जो अपनी आरंभिक संकल्पनाओं में यथार्थवादी से शैलीबद्ध पद्धतियों को लेकर चला है। इसमें अभिनयपूर्ण मुख-मुद्राएँ, शारीरिक गतियों के साथ-साथ नृत्य और संगीत भी अनिवार्य रूप से जुड़े रहे हैं। मुखौटा, कठपुतली, संगीत, नृत्य, मूकाभिनय आदि रंगमंच के धरातल पर एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं।" सामान्य शब्दों में समझा जाए तो यह पृथ्वीलोक रंगमंच है। इसमें रहने वाले प्राणी जो कुछ भी अपने जीवनयापन में करते हैं, वह अभिनय है।

रंगमंच से तात्पर्य है रंगभूमि, यवनिका, नेपथ्य, दृश्यपट के विविध परदे, रंगस्थान, प्रदर्शन, निर्देशक, संयोजक, नेता, नायिका तथा अन्य पात्रों से है।

"नाटक की कथावस्तु का प्रदर्शन या अभिनय जिस स्थल पर होता है, उसे रंगमंच कहते हैं।" रंगमंच शब्द का आविर्भाव 'रंग' और 'मंच' दो शब्दों के संयोग से हुआ है। 'रंग' शब्द का अर्थ है- 'नाच' और नृत्य। 'मंच' का शब्दार्थ है 'ऊँचा बना हुआ मंडप'। इस प्रकार 'रंगमंच' का अर्थ हुआ-वह उच्च स्थल जहाँ पर रंगकर्मी नाच, नृत्य, नाटक आदि अभिनय कलाओं को प्रदर्शित करते हैं। यही भाव साम्य डॉ. उपेंद्रनारायण सिंह ने भी किया है- "रंगमंच की कोई निश्चित परिभाषा नहीं मिलती है। क्योंकि इसमें वैविध्य अत्यधिक है। फिर भी रंगमंच को वह स्थान है जहाँ रंगकर्मी अपना अभिनय करता है और श्रोता उन्हें देखते हैं।"

रंगमंच की व्यवस्था का प. सीताराम चतुर्वेदी जी ने अपनी पुस्तक 'भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच' में बखूबी ढंग से विवरणात्मक रूप से उल्लेख किया है।

"रंगमंच एक स्थल न होकर एक विद्या, एक कला है। इसमें नाट्य प्रस्तुतीकरण, दर्शक और रंग भवन आदि तत्व सम्मिलित हैं। रंगभवन में मंच और रंगशाला उभयनिष्ठ है। प्रस्तुतीकरण के दो तत्व हैं- निर्देशन और व्यवस्था। अभिनय तत्व आंगिक, वाचिक, आहार्य और सात्विक चार उपतत्व में विभक्त हैं। व्यवस्था के अंतर्गत रिहर्सल, प्रबंध और टिकट से लेकर समापन तक की व्यवस्था है। रंगशिल्प में मंच सज्जा, प्रकाश, वस्त्र-विन्यास, रूप-विन्यास, संगीत तथा ध्वनि-विन्यास का प्रबन्ध है। अतः रंगमंच एक विद्या है।"

नाटक और रंगमंच का अन्योन्य संबंध है। हिंदी साहित्य की परंपरा के अंतर्गत नाटक विद्या का स्थान अद्वितीय है। परंतु रंगमंच के अभाव में नाटक अस्तित्वहीन-सा जान पड़ता है। रंगमंच नाटक की आत्मा है, क्योंकि नाटक तभी प्राणवान हो उठेगा, जब-जब वह मंच पर प्रस्तुत किया जायगा।

साहित्य की अन्य विद्याओं से नाटक विलक्षण पहचान रखता है। अन्य विद्याओं की तुलना में नाटक और पाठक या दर्शक का निजी संबंध रहता है। नाटक एक सृजनात्मक कला है और सृजनात्मक कार्य सार्थक होता है रंगमंच पर।

रंगमंच का नाटक से संबंध है। नाटक रंगमंच पर ही खेला जाता है। लोकनाट्य, नृत्य आदि भी रंगमंच के बिना अपूर्ण ही लगते हैं। नाटक व रंगमंच दोनों ही बहुत ही प्राचीन विद्या है। भारत व ग्रीक देशों में इनका प्रचलन अति प्राचीन समय से रहा है।

"ग्रीक रंगमंच विश्व का सबसे पुराना रंगमंच माना जाता है। ऐसा माना गया है कि दुनिया में सबसे पहले रंगमंच की शुरुआत ग्रीक में हुई। ग्रीक रंगमंच मुख्यतः दो तरह के नाटकों के लिए जाना जाता है-ट्रेजडी एंड कॉमेडी।"

इसी प्रकार रंगमंच में उपयोग किये जाने वाले मुखौटे भी अति प्राचीन हैं भारत व ग्रीक दोनों ही स्थानों पर मुखौटा-कला के साक्ष्य मिलते हैं। हड़प्पा सभ्यता में भी मुखौटा-कला के प्रमाण मिलते हैं।

"पाँचवीं शताब्दी ई.पू. के नाटक में मुखौटे मंचन का अभिन्न अंग थे और एक स्वीकृत नाट्य परंपरा। नाटक में भाग लेने वाले सभी अभिनेता एवं कोरस के समस्त सदस्य मुखौटे पहनते थे। स्त्रियाँ नाटकों में भाग नहीं लेती थीं। अतएव स्त्री की भूमिका करने वाले पुरुष पात्र के लिए वैसे भी मुखौटा अनिवार्य था"

मुखौटा का विशेष उपयोग रंगमंच पर ही होता है। अधिक पात्रों को प्रस्तुत करने के लिए मुखौटों का उपयोग कर एक ही व्यक्ति अलग-अलग पात्र बनकर रंगमंच पर प्रस्तुत होता है।

"एक नाटक में बोलने वाले पात्र केवल तीन होते थे। अतएव मुखौटों की सहायता से एक पात्र अनेक भूमिकाएँ कर सकता था और एक ही भूमिका को आवश्यकतानुसार एक से अधिक पात्रों को भी दिया जा सकता है।"

मुखौटे मुख्यतः व्यवहार को प्रदर्शित करने वाले होते हैं। सामान्य जीवन में एक आदमी कई प्रकार का व्यवहार करता है। वह जो होता है वह दिखता नहीं और जो दिखता है वह होता नहीं या यह कहें कि वह भीतर से कुछ और बाहर से कुछ और है।

"मुखौटे व्यवहार के मुखौटे हैं। रंगमंच से जुड़कर मुखौटे 'कुछ और' हो जाते हैं। नाट्य व्यापार के अंतर्गत ये किन्हीं विशिष्ट स्थितियों मनस्थितियों और परिस्थितियों को स्पष्ट एवं संप्रेषित करने लगते हैं। मुखौटा वह रंग युक्त है जो पहनने वाले के चेहरे को ढककर उसे नई भंगिमा और पहचान देती है।"

मुखौटे का प्रयोग रंगमंच में बहुत ही आवश्यक भूमिका निभाता है, जब भाषा और चेहरे से भी वह प्रदर्शित नहीं हो पाता जिसे वह नाटक में दिखाना चाहते हैं; तब मुखौटे के माध्यम से सरलता से संभव हो पाता है।

“जब भी किसी चेहरे पर मुखौटा पहना जाता है तो वह चेहरा सामान्य नहीं रह जाता। रंगमंच पर मुखौटे के प्रयोग की उपयोगिता यह है कि मानव प्रकृति में बहुत कुछ ऐसा है जिसे कहने या दिखने में भाषा और चेहरे के भाव 'चूक' जाते हैं ऐसी स्थिति में मुखौटे का सृजनात्मक इस्तेमाल वह नाटकीय अर्थ रचता है जिसके कथ्य का संप्रेषण अन्य प्रकार के साधनों से नहीं हो पाता है, या जिसके बिना बात अधूरी ही रह जाती है।”

नाटक या रंगमंच में देवी-देवताओं, पशु-पक्षियों को प्रदर्शित करने के लिए मुखौटा विशेष भूमिका का निर्वहन करता है। उदाहरण मोहन राकेश के सुप्रसिद्ध नाटक में हिरण शावक का मुखौटा तैयार किया गया, हिरण शावक को दिखाने के लिए।

**निष्कर्ष :-** मुखौटा-कला अति प्राचीन कला है। जिसका प्रारंभ में शिकार व देवस्तुति के लिए प्रयोग किया गया, परंतु आज आधुनिक युग में रंगमंच व नृत्य में मुखौटों के प्रयोग की आवश्यकता अत्यधिक बढ़ी है। हिंदी रंगमंच में अब यह प्रचलन गतिशील हो गया है।

उदाहरण-गिरीश कर्नाड के 'अग्नि और बरखा' नाटक में वृत्रासुर का मुखौटा अरवसु को अपने काबू में करके उसे सब कुछ तहस-नहस करने पर बाध्य कर देता है। तथा धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' में काले कपड़े पहने और मुखौटा लगाये श्वेतवसनधारी नर्तक शिशु के आक्रमण तथा उलूक वधोल्लास एवं तांडव को देख-सुनकर ही अश्वत्थामा को शिविर में सोये निहत्थे और अचेत पांडवों को मार डालने का विचार आता है। आधुनिक नाटकों में इस तरह के उदाहरण से मुखौटों की उपयोगिता को सहज ही समझा जा सकता है।

### सहायक ग्रंथ सूची

1. चतुर्वेदी, पं. सीताराम, भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, हिंदी समिति, सूचना विभाग, लखनऊ, 1964
2. तनेजा, जयदेव, आधुनिक भारतीय रंगलोक, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 2006
3. सांगानेरिया, सांवरमल, ब्रह्मपुत्र के किनारे किनारे, भारतीय ज्ञानपीठ, 2006
4. सिंह, डॉ. योगेंद्र प्रताप, भारतीय भाषाओं में रामकथा : असमिया भाषा-2,
5. सिंह, डॉ. योगेंद्र प्रताप, भारतीय भाषाओं में रामकथा : असमिया भाषा-1, वाणी प्रकाशन, 2016
6. महतो, भुवनेश्वर, हिंदी एकांकी का रंगमंचीय अनुशीलन, अन्नपूर्णा प्रकाशन।

7. नसीम, कमल, ग्रीक नाट्य कला कोश, राजकमल प्रकाशन, 2009 M365
8. भ्रमर, रवींद्र, हिंदी लोक नाट्य (पृथ्वीराज कपूर अभिनंदन ग्रंथ), पृ. 9
9. मोहन राकेश, आधे अधूरे (नाटक), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2010. मोहन राकेश, आषाढ़ का एक दिन, राजपाल एंड संस, 1997
11. कर्नाड, गिरीश, अग्नि और बरखा (नाटक), राधाकृष्ण प्रकाशन, 2019
12. भारती, धर्मवीर, अंधायुग, किताब महल, 2016

#### पत्रिकाएँ

1. प्रवाह पत्रिका, दिसंबर 2018 फरवरी 2018, अंक-35
2. अभिनव इमरोज, सितंबर-2019, अंक-9

सूर्य प्रकाश  
शोधार्थी, हिंदी विभाग  
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली